शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या : 87-95

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर : एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन

✍ **नीतामणि बरदलै**

शोध-सार:

सुशीला टाकभौरे हिंदी साहित्य की सफल कवयित्री हैं। एक दलित परिवार में जन्मी टाकभौरे ने जाति पर आधारित भारतीय समाज-व्यवस्था की कुरीतियों को देखा ही नहीं झेला भी है। कवयित्री ने पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए उसकीमुक्ति के स्वर से मुखरित कविताएँ लिखी हैं। उनकी कविता विद्रोह, संघर्ष एवं अधिकार का दस्तावेज है।

बीज शब्द: *सुशीला टाकभौरे की कविता, समाज-व्यवस्था, स्त्री अधिकार, स्त्री मुक्ति।*

प्रस्तावना:

हर युग में स्त्री का संघर्ष विद्यमान है, चाहे वह सामाजिक जीवन में हो या पारिवारिक जीवन में। स्त्री हमेशा एक निर्दिष्ट मानदंड की राही है। मनुवादी पुरुषसत्ता वाला समाज उसे लगातार उस मानदंड से बाहर निकलने का अधिकार ही प्रदान नहीं करता, बल्कि बार-बार उसे दबाने की कोशिश करता है। परिवर्तित युग के साथ-साथ लोगों के मनोभावों और रहन-सहन में अनेक परिवर्तन हुए परंतु स्त्री के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण आज भी पितृसत्तात्मक समाज में दिखाई देता है। 21 वीं सदी की नारी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्वाधीन है, परंतु पारिवारिक क्षेत्र में आज भी नारी पुरुष द्वारा परिचालित है। अपने पिता, पति द्वारा नारी सदा ही उपेक्षित रहती है, उसका दृष्टिकोण हमेशा पुरुष से हेय माना जाता है। नारी हमेशा ही इस जीवन के दलदल से उबरने की कोशिश करती है और स्वयं अपने अस्तित्व पर प्रश्न करती है।

स्त्री के पास बोध और विचार शक्ति होने के बावजूद वह बोध-शून्य और विचार-शून्य बनी रह जाती है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था ने उसे सिर्फ 'स्त्री' के रूप में रूपांतरित किया है। स्त्री का अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ समाज तथा परिवार में जीना ही स्त्री-मुक्ति का आयाम है, स्त्री-व्यथा से मुक्ति की राह है।

विश्लेषण:

सुशीला टाकभौरे दलित कवयित्रियों में अन्यतम हैं। समाज-चेतनशील कवयित्री सुशीला टाकभौरे के साहित्य में स्त्री-उद्धार के स्वर उजागर होते दिखाई देते हैं। आधुनिक दलित कविता जगत में सुशीला टाकभौरे अमूल्य निधि हैं, वे पहली हिन्दी-भाषी दलित कवयित्री हैं। दलित समाज तथा दलित नारी-जीवन संबंधी अनेक वास्तविक चित्रण टाकभौरे जी की कविताओं में झलकते हैं। भारतीय समाज में स्त्री होना तो अभिशाप स्वरूप है, लेकिन दलित स्त्री होना दोहरा अभिशाप ही है। भंगी जाति में जन्म लेने वाली टाकभौरे जी अनेक संघर्षों को झेलती हुई अध्यापिका जैसे सम्मानीय और गौरवपूर्ण पद पर कार्यरत हैं। जातिवादी भारतीय समाज में निम्न जाति में जन्म लेना अभिशाप स्वरूप है, परंतु निम्न जाति में एक स्त्री के रूप में जन्म लेना अत्यंत ही संघर्ष पूर्ण है। उसे अपनी जाति और अपना स्त्रीत्व दोनों के लिए संघर्षों का सामना करना पड़ता है। इस दोहरे अभिशाप तथा संघर्ष से उबरने की वाणी व प्रेरणा उनकी अधिकांश कविताओं में मिलती है। दलित साहित्यकार टाकभौरे जी द्वारा रचित प्रमुख कविता-संकलन हैं- 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज' आदि। उनका काव्य-संग्रह 'तुमने उसे कब पहचाना' वस्तुतः नारी-अस्मिता पर लिखी गई कविताओं का संग्रह है। कवयित्री ने इसमें अत्यंत सूक्ष्म रूप में समाज के विभिन्न उपादानों को लेकर पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति को दर्शाया है। उनकी कविताओं में यथार्थता की गूंज झलकती है । कवयित्री ने 'गाली' नामक कविता में नारी और पुरुष के अर्थ को हृदय विदारक रूप में दिखाया है। सच में भारतीय समाज में नारी इतनी अधिक पराधीन है कि गाली के लिए भी स्त्री बोधक शब्द का चयन किया जाता है। कवयित्री कुत्ता

और कुतिया शब्द से नारी और पुरुष की भिन्नता को दिखाती हैं। समाज में लोग कुत्ते को वफादार मानते हैं परन्तु कुतिया को वफादार नहीं माना जाता, बल्कि उसे एक नकारात्मक अर्थ में बोला जाता है। कुतिया शब्द सुनकर ही अनुभव होता है कि यह एक गालीसूचक शब्द है। इसलिए वे अपनी कविता के माध्यम से प्रश्न करती हैं-

कुतिया शब्द सुनकर ही लगता है
यह एक गाली है,
क्या इसलिए कि वह
स्त्री वर्ग में आती है ?
उसके चरित्र को उसकी वफा को
अनेक बांटों में टोला जाता है !

(टाकभौरे 1994 : 29)

हमारे भारतीय समाज में समर्पण तथा विद्रोह सभी में नारी चरित्र तथा स्वाभिमान पर कटाक्ष किए जाते हैं, नारी को सदैव दोष दिया जाता है। पुरुषों की गलतियों पर हमेशा मनु नामक चादर ओढ़ दी जाती है-

पुरुष प्रधान समाज में
चाहे समर्पण हो
या विद्रोह,
दुर्गुण का दोष नारी पर है।
पुरुष के दुर्गुणों पर हमेशा
मनु- नाम की
चादर डाली जाती है।

(टाकभौरे 1994: 29)

मनुवादी समाज में एक स्त्री जब भी कुछ करने की, कुछ लिखने की या कहने की चाहत रखती है, उसमें वह स्वतंत्र नहीं रह पाती। उसे बार-बार यह अनुभव होता है कि जैसे कोई उसकी पहरेदारी कर रहा है। उसके मन में एक डर हमेशा विराजमान रहता है। उसे अनुभव होता है कि जैसे वह एक मजदूर है और उसको परखने के लिए कोई पहरेदार हो। वह एहसास करती है कि वह जैसे किसी की खरीदी हुई संपत्ति हो और उसपर उसके चौकीदार की निगाह हो। कवयित्री ने 'स्त्री' नामक कविता में अत्यंत हृदयस्पर्शी स्वर में कहा है-

पहरेदारी करता हुआ
कोई
सिर पर सवार हो
पहरेदार,
जैसे एक मजदूर औरत के लिए
ठेकेदार
या खरीदी संपत्ति के लिए

चौकीदार।

(टाकभौरे 1994 : 30)

पुरुषवादी समाज ने असल में नारी को कभी भी नहीं समझा। इसलिए नारी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अपनी अस्मिता की खोज करती है, खुद को पहचानने की कोशिश करती है। इसी विचारधारा को लेकर कवयित्री 'स्त्री' नामक कविता में लिखती हैं, परंपरावादी संस्कार हमेशा स्त्री को बांधता है, जीवन के हर मोड़ पर उसे अपनी बोली और कार्य में सावधानी बरतनी पड़ती है-

वह सोचती है-
लिखते समय कलम को झुका ले
बोलते समय बात को संभाल ले
और समझने के लिए
सबके दृष्टिकोण से देखे ,
क्योंकि वह एक स्त्री है !
लेकिन कब तक?

(टाकभौरे 1994: 30)

हमारे समाज में बेटों का जन्म आशीर्वाद स्वरूप माना जाता है और बेटियों का जन्म अभिशाप स्वरूप। आज भी पितृ सत्तात्मक समाज में बेटों को ही कुलधारी माना जाता है, वंश का रक्षक समझा जाता है। बेटियों को पराया धन समझकर उनके प्रति उपेक्षित तथा अवहेलित दृष्टिकोण रखा जाता है। एक माँ पुत्र-रत्न प्राप्त करने के लिए आस बनाए रखती है-

परिंदों की तरह
पंख फड़फड़ाते हैं
स्वप्न
एक बेटा और एक बेटा
हर बार आस अधूरी ही रहती है।

(टाकभौरे 1995: 64)

इतिहास से ही यह विदित है कि नारी को हमेशा दंड स्वीकार करना पड़ता है। भगवान राम के कारण सीता भी अपना दंड स्वीकार कर मिट्टी में विलीन हुई। लेकिन समाज के परिवर्तन के साथ साथ नारी मन में भी प्रगति आई। आज नारी भोली-भाली जानकी नहीं जो अपना दोष बिना प्रतिवाद किए मान लेगी। अब जानकी सब कुछ जान गयी है, समझ गयी है। जानकी की तरह आज की स्त्री धरती में न समाकर आकाश में जाना चाहती है। उच्च उड़ान भरना चाहती है, बिजली जैसे चमक कर वह संदेश देना चाहती है कि नारी को भी पुरुष की तरह जीने का अधिकार

है, स्वतन्त्रता का हक है। सुशीला टाकभौरे 'जानकी जान गयी है' कविता में इसी बात का उल्लेख करती हैं-

आज जानकी सब जान गयी है,
अब वह धरती में नहीं
आकाश में जाना चाहती है,
बिजली-सी चमक कर
संदेश देना चाहती है-
"पुरुष प्रधान समाज में
स्त्री भी
समानता की अधिकारी है।

(टाकभौरे 1995 : 66)

निरंतर आवेग तथा संघर्ष में जलते रहना ही नारी का जीवन है। पुरुष प्रधान समाज में नारी अबला है, शक्तिहीन है। परंतु अगर उसकी आंतरिक शक्ति जग जाये तो वह ज्वालामुखी स्वरूप बन जाती है। नारी को बस इसी शक्तिशाली रूप को पहचानना है। नारी की शक्ति जाग जाए तो वह सिंहनी की तरह गर्जना कर सकती है, नागिन की तरह प्रतिशोध ले सकती है। उस शक्तिपुंज को हमेशा शमा की तरह जीना पड़ता है, जलना पड़ता है। जलना ही जैसे नारी का जीवन है। कवयित्री नारी समाज के प्रति आह्वान करती हैं कि अगर जलते रहना ही है तो हमें शमा की तरह नहीं मशाल की तरह जलना चाहिए, जिससे कि समाज को रोशनी मिले, उजास मिले-

जलना ही है, तो इस तरह जले,
संसार को उजास दे,
वह 'शमा' नहीं 'मशाल' है।
शक्ति में बेमिसाल है।

(टाकभौरे 1995 : 69)

समाज ने नारी को कब पहचाना है, नारी के सुख-दु:ख, अस्तित्व को कब जाना और समझ पाया है? वास्तव में संसार में हर स्त्री को स्त्री होने का दु:ख सहना पड़ता है। नारी रूप में जीवन जीने की परीक्षा वह जीवन में हर क्षण देती है। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविता 'तुमने उसे कब पहचाना' में नारी जीवन की दु:खद परिस्थिति को उजागर किया है-

चन्दन वन की शाख
मटियारे चुल्हें में जलती रही,
नारी होने की परीक्षा

वह
हर पल देती रही।

(टाकभौरे 1995 : 61)

स्त्री के बिना घर में रौनक ही नहीं होती। स्त्री ही एक घर तथा परिवार की स्वाभिमान होती है। परंतु उस रौनक को पुरुषवादी समाज में महत्व ही नहीं दिया जाता। घर के हीरे रूपी स्त्री को पुरुष कोयला जैसे जलाते हैं, उसकी जगमगाहट रंगीन जीवन को बेरंग कर देती हैं-

मगर घर का हीरा
कोयला जैसा
जलाया जाता है।

(टाकभौरे 1995: 61)

समाज में नारी को हमेशा उपेक्षा और आक्रोश-भरी निगाहों से देखा जाता है। उपेक्षा और आक्रोश से नारी को हमेशा ही रौंधा जाता है-

उपेक्षा की ठंडक और
आक्रोश के तेज़ाब से
नारी व्यक्तित्व को
हमेशा रौंधा जाता है !!

(टाकभौरे 1995 : 61)

सुशीला टाकभौरे की कविताओं में केवल नारी की दु:ख-गाथा को ही दर्शाया नहीं गया है, बल्कि उन सब में उस दर्द-भरी ज़िंदगी से उबरने की भी सलाह विद्यमान है, स्त्री-उद्धार का स्वर उनके काव्य में स्पष्ट झलकता है। वे नारी को अबला रूप में नहीं देखना चाहती हैं और उनके अनुसार न ही नारी को रोटी-रसोई तक सीमाबद्ध होना चाहिए। प्रत्येक नारी को अपने अधिकार ज्ञात होना चाहिए। वे नारी को जागृत करना चाहती हैं ताकि परंपरा से चली आई नारी की दासता को सम्मान और समानाधिकार मिलें। सुशीला टाकभौरे की दृष्टि में वही नारी धन्य है जो समाज की सम्पूर्ण रीति-नीतियों से ऊपर उठकर, उन्हें नये रूप में अपनाकर देश तथा समाज के लिए अपना जीवन न्योछावर करे-

धन्य वही नारी जो
इन सबसे ऊपर उठकर,
नए नियम-विधान बनाकर
देश-समाज को वरती है।

(टाकभौरे 1995 : 70)

स्त्री का जीवन स्वतंत्र है। स्त्री स्वतंत्र रूप से जीना चाहती है। परंतु परंम्परा के

कारण ही स्त्री शिकंजे में बंधी हुई है। स्त्री के सभी अंग स्वतंत्र हैं, सिर्फ उसके पाँव बंधे हुए हैं, मनुवादी पुरुष-सत्तात्मक समाज ने उसके पांवों को ऐसी जंजीरों से बांध दिया है कि सब कुछ मुक्त होते हुये भी वह मुक्त नही हो पाती। स्त्री अपने मायके तथा ससुराल दोनों में ही दरवाजे के पीछे से संसार को देखती है। दरवाजे से बाहर निकलकर संसार को देखने के लिए मायके और ससुराल ने कभी उसके पांवों की जंजीर को खोला ही नहीं। कवयित्री के अनुसार-

आँख, कान, विचार स्वतंत्र हैं
बंधन है सिर्फ पावों में।
कुल की लाज
सीमाओं का दायरा
घर की चौखट तक,
मायका हो या ससुराल
दरवाजे के पीछे
पर्दे की ओट से
वह देखती है संसार।

(टाकभौरे 1995 : 77)

सुशीला टाकभौरे के अनुसार औरत की मजबूरी सिर्फ परंपरागत रीतियों को लेकर है। 'मेरी स्थिति' नामक कविता में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर ढंग से एक स्त्री को स्त्री के रूप में लेकर स्त्री-अस्तित्व के प्रश्न पर प्रकाश डाला है। वे कहती हैं कि समाज को स्त्री की सही स्थिति को परखना चाहिए। स्त्री का मूल्यांकन सिर्फ सधवा अथवा विधवा, मायके और ससुराल की कुल-इज्जत तक ही सीमित नहीं करना चाहिए, बल्कि उनसे ऊपर एक मानव शरीर और मन के धरातल पर उसे परखना चाहिए-

मुझे यूं टुकड़ों में न बांटिये
मैं एक औरत हूँ
सधवा-विधवा से परे
दो-परिवारों की इज्जत के अलावा
मैं मैं हूँ।

(टाकभौरे 1995 : 78)

समाज की हर स्थिति में स्त्री को यूं ही इस्तेमाल किया जाता है। कभी कला के नाम पर, तो कभी विज्ञापन के नाम पर। चित्रकला, वास्तु-शिल्प, अजंता-एलोरा में नारी के जो वासनात्मक रूप दिखाये गये हैं उन्हें देखकर पुरुष समाज वासना के रंग में घुल जाता है। सुशीला टाकभौरे अपनी कविताओं के माध्यम

से संदेश देती हैं कि नारी की स्थिति को ऐसे न दिखाये। नारी सृष्टि है- माँ, पुत्री, पत्नी, बहन के रूप में नारी-जीवन धन्य है। नारी-जीवन की महिमा पर गर्व करती हुई सुशीला टाकभौरे 'युग चेतना' कविता में लिखते हैं-

मैं संशित हूँ, पर
गर्वित भी,
मैं गर्भशीला
भविष्य के एक सत्य की
माँ बनना चाहती हूँ।
मैं वंध्या नहीं
न ही पत्नी हूँ
नपुंसक काल की।
मैं सृजनशीला।

(टाकभौरे 1995:57)

इस प्रकार स्त्री प्रकृति है। नारी वह शक्ति है जिसके माध्यम से एक समाज अपने भविष्य को देख पाता है। नारी-जीवन अपने-आप में एक गर्व का विषय है क्योंकि नारी सृजनशीलता है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला टाकभौरे की कविताएं स्त्री-मुक्ति-चेतना से संपृक्त हैं। उनकी अधिकांश कविताओं में स्त्री-उद्धार के स्वर परिलक्षित होते हैं। स्त्रियों की समानाधिकार-हीनता से जैसे वे अत्यंत दु:खी हैं। पराधीन तथा गुलामी रूपी इस जीवन-यात्रा से वे स्त्रियों को मुक्ति दिलाना चाहती हैं। उनकी कविताएँ अपने-आप में प्रेरणादायक हैं, जिन्हें पढ़कर हृदय में एक आत्मविश्वास तथा साहस जाग जाता है। उनकी ज्यादातर कविताओं में अंबेडकर, ज्योतिबा फुले आदि महान विभूतियों के गुणगान मिलते हैं। उनके आदर्शों को वे समस्त दलित समाज तथा नारी समाज को ज्ञात कराना चाहती हैं। उनकी कविताएं मानवीय धरातल से संपृक्त हैं। उनकी कविताओं से जातिवादी तथा पुरुषवादी भावधाराओं से ऊपर उठकर मनुष्य को मानव के रूप में देखने की प्रेरणा मिलती है।

ग्रंथ-सूची:

आधार-ग्रंथ:

टाकभौरे, सुशीला.स्वाति बूंद और खारे मोती. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1993.

--.यह तुम भी जानो. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1994.

--.तुमने उसे कब पहचाना. नागपुर:शरद प्रकाशन, 1995.

--.हमारे हिस्से का सूरज. नागपुर:शरद प्रकाशन, 2005.

सहायक ग्रंथ-सूची:

कस्तवार, रेखा.स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ. दिल्ली:राजकमल प्रकाशन, 2016.

लाल, चमन.दलित साहित्य : एक मूल्यांकन. दिल्ली: राजपाल एंड सन्ज, 2014.

संपर्क-सूत्र:
सहायक अध्यापक
डिगबोई महिला महाविद्यालय